ओ३म्

M.A. चतुर्थ सेमेस्टर
संस्कृत-विभाग P.U.
प्रतिभा आर्या

EC-2

मनुस्मृति (संन्यासधर्म विषय) षष्ठ अध्याय

आज हम मनुस्मृति के षष्ठ अध्याय में वर्णित संन्यास धर्म विषयक श्लोकों का अध्ययन करेंगे। जिसमें संन्यास आश्रम से सम्बन्धित सभी नियम व धर्म का व्याख्यान आचार्य मनु ने किया है। मनुस्मृति जो मानव जीवन के उद्देश्य तथा जीवन में किए जाने वाले वाले कर्मों को किस प्रकार किया जाए, कौन से कर्म, कौन से आश्रम में करणीय हैं, तथा कौन से अकरणीय हैं। किन कर्मों के करने पर कौन फल प्राप्त होता है, आदि अनेक विषयों पर मनुस्मृति में प्रकाश डाला गया है।

सम्प्रति हम संन्यास आश्रम कौन सी अवस्था में ग्रहण करना चाहिए इस विषयक प्रथम श्लोक पढ़ेंगे -

पद्य - वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥ 33 ॥

श्लोक में कुछ सन्धियुक्त शब्द हैं सर्वप्रथम उनका विग्रह करेंगे। विहृत्यैवम् → विहृत्य + एवम्
भागमायुषः - भागम् + आयुषः।
चतुर्थमायुषः - चतुर्थम् + आयुषः।
सङ्गान्परिव्रजेत - सङ्गान् + परिव्रजेत्।

पद्यार्थ करते समय अन्वय की आवश्यकता पड़ती है। बिना अन्वय के अर्थ में सुगमता नहीं रहती क्योंकि पद्य में शब्द को छन्द के अनुसार ही लगाया जाता है प्रयुक्त किया जाता है।

पद्यार्थ - (एवं) इस प्रकार से, अर्थात् संन्यास से पूर्व आचार्य वानप्रस्थ के नियम व धर्म का आख्यान शास्त्र में किया जा चुका है। उसी पूर्व प्रसंग को जोड़ते हुए मनु महाराज कह रहे हैं - पूर्वोक्त प्रकार से (वनेषु आयुषः तृतीयं भागम्) वनों में, अरण्यों में, जंगलों में, आयु के तृतीय भाग, तृतीय अवस्था, मानव शरीर की आयु को

Scanned with CamScanner

सामान्यतः चार भागों में विभक्त किया गया है जिसमें 25 वर्ष तक की अवस्था सीखने की, ग्रहण करने की है जिसे शास्त्रों में ब्रह्मचर्य काल के रूप में इंगित किया गया है। द्वितीय अवस्था 26 से 50 वर्ष तक की अवस्था, जिसे गृहस्थ आश्रम के रूप में वर्णित किया है, तथा तृतीय अवस्था है 50 से 75 वर्ष तक की, जिसे वानप्रस्थ आश्रम के रूप में विभाजित किया है जिसका वर्णन इसी षष्ठ अध्याय के प्रारम्भ में मनु महाराज ने संकेतित किया है। कि जब गृहस्थ में रहते हुए शरीर की चमड़ी ढीली हो जाए जिसे लोक भाषा में झुर्रियाँ पड़ना कहते हैं शरीर ऐसा हो जाए बाल पकने लग जाएं तथा जब पुत्र (या पुत्री) के घर सन्तान हो जाए तब अरण्य में जाकर निवास करे। इसी को मनु महाराज ने इस श्लोक में भी कहा है कि (वनेषु आयुषः तृतीयं भागम्) वन में आयु के तृतीय भाग वानप्रस्थ में (विहृत्य) विहार करके, अधिक से अधिक 25 वर्ष, न्यून से न्यून 12 वर्ष तक निवास करने के उपरान्त (आयुषः चतुर्थम् भागम्) आयु के चौथे भाग अर्थात् 75 वर्ष के पश्चात् (संगान् त्यक्त्वा) सभी सङ्गों को छोड़कर, अर्थात् शारीरिक रूप में बन्धु बान्धवों का संग तथा मानसिक रूप में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि शत्रुओं का भी पूर्णरूपेण साथ छोड़ कर, अर्थात् इन्हें अपने जीवन में बिल्कुल न रखते हुए (परिव्रजेत्) परिव्राजक अर्थात् संन्यासी हो जावे।

भावार्थ- इस पद्य के माध्यम से मनुस्मृतिकार यह भी संदेश देना चाहते हैं कि तृतीय अवस्था करके अपनी इतिश्री न समझ ले, वन में रहते हुए अपने गृहस्थ के सम्बन्धों को मन से छोड़ने का पूर्वाभ्यास करने के उपरान्त संन्यासाश्रम में प्रवेश करे। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है

"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।" [शतपथ काण्ड 14]

ब्रह्मचर्य आश्रम को भली भांति समाप्त कर गृहस्थी हो, गृहस्थी होकर वानप्रस्थी हो, और अन्त में वानप्रस्थ के अनन्तर परिव्राजक संन्यासी होकर, अपनी आश्रम व्यवस्था को पूर्ण करे।

Scanned with CamScanner

द्वितीय पद्य - अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥6/36॥

प्रसंग - संन्यासाश्रम रूपी सीढ़ी को मानव कब प्राप्त कर सकता है इस विषय को इस पद्य में बताया गया है।

श्लोक में पदच्छेद देखेंगे -

1. विधिवत् + वेदान् = विधिवद्वेदान् - यहाँ झलां जशोन्ते सूत्र से जो पदान्त झल् है उसे जशादेश होकर उपर्युक्त रूप बना है। इसरा शब्द है पुत्रांश्च इसका पदच्छेद - पुत्रान् + च यहाँ न् का रुत्व, रुत्व को विसर्ग, विसर्ग को पुनः सकारादेश श्चुत्व होकर पुत्रांश्च रूप सिद्ध होता है हल् सन्धि के अन्तर्गत है। तृतीय शब्द है शक्तितः + यज्ञैः + मनः इन्हें पृथक् करने पर शक्तितः + यज्ञैः + मनः, प्रथम दो शब्द शक्तितः + यज्ञैः यहाँ हशि-च से हश् परे रहते अकार से उत्तर रु के रेफ को उकार हो जाता है उ को आद् गुणः गुणैकादेश होकर शक्तितो + यज्ञैः सिद्ध होगा दूसरा पद है यज्ञैः + मनो + मोक्षे यहा 'स ससजुषो रुः' से रु आदेश होकर यज्ञैर्मनो, मनो + मोक्षे हशि-च सेलगाकर, उकार, उकार को ओकार हो गया, पदच्छेद- मनः + मोक्षे।

अर्थ - (विधिवत् वेदान् अधीत्य) विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करके, कौन सी विधि है वेदों के अध्ययन की मनुस्मृति के ही तृतीय अध्याय में मनु महाराज ने उसकी विधि भी हमारे लिए प्रदान की हुई है - षट्त्रिंशद् आब्दिकं चर्यं 36 वर्ष पर्यन्त चारों वेदों का अध्ययन गुरु के समीप ब्रह्मचर्य काल में करे, इसमें विकल्प भी दिया यदि 36 वर्ष नहीं तो उससे आधे अर्थात् 18 अठारह वर्ष पर्यन्त अध्ययन करें, यदि उतना भी न कर सके तो उसका आधा 9 नव वर्ष वेदाध्ययन में लगाए अथवा जब तक ऋग् यजुर् साम की समाप्ति न हो तब तक अध्ययन में लगा रहे इस प्रकार आचार्यकुल गुरुकुल में जाकर यथाविधि अध्ययन करे। क्या बच्चा सर्वप्रथम सीधे वेद ही पढ़ने लग जाए इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती "सत्यार्थ प्रकाश" तृतीय समुल्लास पठनपाठन विधि प्रकरण में विस्तार से बताते हैं कि प्रथम बालक बालिका को वर्णोच्चारण शिक्षा का अभ्यास, तदनन्तर अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिकोष आदि पाणिनिकृत पञ्चोपदेश को विस्तार से पढ़ने के उपरान्त, व्याकरण का ज्ञान होने के अनन्तर निरुक्त, पिंगलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे वैदिक लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का ज्ञान तत्पश्चात् मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण, महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे-२ प्रकरण, क्रमरीति से पढ़ावें, तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य,

Scanned with CamScanner

तथा वेदान्त को पढ़ने से पूर्व सर्वसम्मत एकादशोपनिषद् का भी यथाविधि स्वाध्याय करे तदनन्तर चारों वेदों के चार ब्राह्मण पढ़ने के अनन्तर स्वर शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया सहित चारों वेदों को पढ़े, उपवेदों को पढ़े। वेद- ऋग् यजुः, साम अथर्व, उपवेद- आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थवेद। इस प्रकार 21, 22 वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत हो जायेगा। उपर्युक्त प्रकार से, विधि से वेदों को पढ़ कर (धर्मतः पुत्रान् उत्पाद्य) धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न करके, (धर्मतः) पुत्रों को उत्पन्न करने के लिए भी क्या धर्म की आवश्यकता है? हाँ, है, गृहस्थ में, विवाह संस्कार के बाद ही व्यक्ति प्रवेश करता है क्योंकि जीवन को समुन्नत बनाने के लिए ऋषियों ने, मुनियों ने, ज्ञानियों ने, धर्मात्मा विद्वान् विज्ञ विप्रों ने चार आश्रमों की व्यवस्था की है उसी प्रकार विवाह के प्रकार भी बताए। श्रेष्ठ ५ प्रकार के विवाह पद्धतियों में कोई भी चुन कर उसके अनुसार गृहस्थ में प्रवेश करने के उपरान्त भी जिन राशियों में गर्भाधान करने का निषेध है उनको छोड़ कर सन्तान को उत्पन्न करे, जो इस पूरी प्रक्रिया को अपनाता है वही धर्मपूर्वक सन्तान उत्पन्न करके, क्या अधर्मपूर्वक भी सन्तान होती है? हाँ अवश्य होती है, जब बिना विवाह के कामवासना के वशीभूत होकर परस्त्री के पास जा, जो सन्तान उत्पन्न करता है वह अधर्म पूर्वक सन्तान उत्पन्न करता है इसीलिए मनु महाराज ने कहा - धर्मतः पुत्रान् उत्पाद्य, इसके बाद क्या करे? (शक्तितः यज्ञैः इज्ट्वा) सामर्थ्यानुसार यज्ञों के द्वारा हवन करके, अर्थात् देखा देखी न करे जैसा जिसका सामर्थ्य है उसी के अनुसार व्यक्ति करे 'यज्ञैः' बहुवचनान्त है, अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ इन पांचों प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करे, मात्र देवयज्ञ आहुति व सामग्री डालकर अपनी इतिश्री न मान ले, गृहस्थ आश्रम में तो कार्याधिक्य के कारण कभी छूट भी गया हो किन्तु अब तृतीय आश्रम वानप्रस्थ में (शक्तितः) सम्पूर्ण सामर्थ्य से, बिना आलस्य व प्रमाद किए यज्ञों का सम्पादन करके (मोक्षे मनः निवेशयेत्) मोक्ष में मन को लगाये अर्थात् मोक्ष में, मोक्ष क्या है? क्या चतुर्थ आश्रम मोक्ष है? नहीं मोक्ष नहीं है, किन्तु मोक्ष की तैय्यारी का अन्तिम पड़ाव है, मुक्ति तो व्यक्ति पैदा होते ही चाहने लगता है क्या किसी को बंधन अच्छा लगता है? नहीं, पर यदि ऋषि कथित वेद निवेदित नियमों का पालन नहीं करेंगे तो गहरे अज्ञान से जकड़ लिए जायेंगे, अतः वेद प्रदत्त नियम, धर्म, व्रत ही व्यक्ति की पूर्ण मुक्ति का मार्ग

Scanned with CamScanner

प्रशस्त करता है। यदि अनन्त आनन्द, ईश्वरानन्द, सच्चिदानन्द को चाहता है तो मन को संन्यास में मोक्ष में लगावे, संन्यास वास्तव में है क्या ? क्या घर छोड़ देना, बाल बढ़ा लेना, भगवा वस्त्र धारण कर लेना, किसी मन्दिर वा मठ में जाकर भगवान् का अर्चन पूजन करना मात्र ही संन्यास है या अन्य कुछ ? संस्कार विधि [महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत] में संन्यास प्रकरण में इसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार की है "

"सम्यङ् न्यस्यन्ति अधर्माचरणानि येन वा सम्यङ् नित्यं सत्कर्मस्वास्ते उपविशति स्थिरीभवति येन सः, संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी" [संस्कार विधि संन्यास प्रकरण]

"जो अच्छी प्रकार, भली भांति अधर्माचरणों को त्याग देता है, जो नित्यप्रति श्रेष्ठाचरणं, विद्यायुक्त आचरण, धर्मयुक्ताचरण वेदानुकूल आचरण में स्थिर रहता है, उससे पृथक् नहीं होता, वह संन्यासी होता है।"

जो उपर्युक्त प्रकार से मोक्ष में संन्यास में अपने मन को लगाता है वही संन्यासी है।

भावार्थ —

मनु महाराज का तात्पर्य यही है कि वेदानुकूल, मनु प्रतिपादित ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ करने के उपरान्त अपने मन को संन्यास आश्रम में लगावे, इससे इतर विषयों में मन को कभी न लगावे ॥

अग्रिम श्लोक उपर्युक्त आचरण जो नहीं करता वह किस गति को प्राप्त करता है इस विषय को इस श्लोक में कहा गया है —

(3) पद्य — अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ 6 । 37 ॥

अर्थ — (द्विजः वेदान् अनधीत्य) द्विज वेदोंको न पढ़कर, द्विज कौन है ? जिसका दूसरा जन्म होता है वह द्विज कहलाता है, प्रथम जन्म तो माँ के गर्भ से होता है किन्तु दूसरा जन्म आचार्य कुल में होता है,

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥

हमारी वैदिक शिक्षण पद्धति में तो बालक बालिका

मातृकुल वा पितृकुल को छोड़कर, उपनयन करके आचार्य-कुल में वेदारम्भ संस्कार के उपरान्त प्रवेश करता था। श्रावणी उपाकर्म के दिन ही आर्यजन यज्ञोपवीत परिवर्तन तथा नवीन छात्रों का वेदारम्भ करते थे। जब आचार्यकुल में शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त विद्याव्रतस्नातक बनकर छात्र का समावर्तन संस्कार होता था तब उस शिष्य का छात्र का विद्यार्थी का, अन्तेवासी का दूसरा जन्म कहलाता था अर्थात् अब वह द्विज हुआ। जो द्विज वेदों को नहीं पढ़कर, क्योंकि आचार्यकुल में सभी छात्र तो एक समान होते न थे इसीलिए पाणिनी की अष्टाध्यायी में ओदनपिण्याखलाः उदाहरण भी आता है अर्थात् कुछ छात्र केवल ओदन-चावल खाने के लिए ही रहते थे; क्योंकि पांचो अंगुलियाँ एक समान न हैं न हो सकती हैं, जिसका वेदारम्भ तो हुआ पर जिसने मनोयोग से नहीं पढ़ा वह विद्या स्नातक नहीं बना। विद्या में जो स्नान करले, ज्ञान से जो स्वयं को आपूरित करले वह विद्यास्नातक। जो व्रतों का पालन करे वह व्रतस्नातक। और जो विद्या और व्रत दोनों में अगुणी रहे वह विद्याव्रतस्नातक कहलाता है अतः जो वेदों को नहीं पढ़ा, (अनुत्पाद्य तथा सुतान्) तथा जैसा की पूर्व श्लोक में कहा गया था, पूर्व में कहा गया था "धर्मतः पुत्रान् उत्पाद्य" धर्मपूर्वक सन्तान उत्पन्न करके, अब यहाँ कहा जा रहा है (तथा सुतान् अन्+उत्पाद्य) धर्मपूर्वक सन्तान उत्पन्न न करके, (च) और (यज्ञैः एव अन्+इष्ट्वा) यज्ञों का अनुष्ठान न करते हुए, न करके (मोक्षम् इच्छन्) मोक्ष की इच्छा रखते हुए (अधः व्रजति) नीचे गिर जाता है। अधोगति को प्राप्त करता है।

भावार्थ – जो आचार्यकुल में वेदों का अध्ययन नहीं करता, धर्मपूर्वक पुत्रों को नहीं जन्मता तथा यज्ञादि श्रेष्ठ महायज्ञों का अनुष्ठान भी नहीं करता ऐसा व्यक्ति मोक्ष की इच्छा संन्यास की इच्छा रखते हुए भी, अधो गति को ही प्राप्त करता है, जैसा कर्म वैसा ही फल प्राप्त करता है।

Scanned with CamScanner

प्रसङ्ग:- संन्यास आश्रम ग्रहण करने का एक सामान्य नियम है कि वानप्रस्थ के अनन्तर लिया जाता है किन्तु कोई साधक व्यक्ति की स्थिति वानप्रस्थ से पूर्व ही यदि गृहस्थ में बन जाती है तो वह गृहस्थ से सीधे ही संन्यास ग्रहण कर सकता है इस विषयक प्रस्तुत श्लोक उद्धृत किया गया है -

(५) पद्य - प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मण: प्रव्रजेद् गृहात् ॥६।३८॥

संध्यक्षर युक्त पद है निरूप्येष्टिम् , आत्मन्यग्नीन् ।
निरूप्य + इष्टिम् = आर् गुण: गुणैकादेश तथा
आत्मनि + अग्नीन् = इकोयणचि से यणादेश

अर्थ - (सर्ववेदसदक्षिणाम्) जिस यज्ञ में समस्त सम्पत्ति को दक्षिणा रूप में देते हैं जैसा कि कठोपनिषद् में भी इस शब्द का प्रयोग प्रारम्भ में ही किया गया है "उशन् ह वै वाजश्रवस: सर्ववेदसं ददौ"

नचिकेता का पिता वाजश्रवा ने, स्वर्ग सुखों से छूटने के लिए (सर्ववेदसम्) अपने सब अन्न धनादि पदार्थों को दे दिया। जिस यज्ञ में सबकुछ आहुत कर दिया जाए उसी को विश्वजित् = सर्वमेधयज्ञ, प्राजापत्येष्टि कहते हैं। प्राजापत्येष्टि - प्रजापति परमात्मा के प्राप्त्यर्थ जो इष्टि=यज्ञ किया जाए वह प्राजापत्येष्टि है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी सर्वस्व त्याग कर संन्यास की दीक्षा ली थी इस विषय में वात्स्यायन मुनि ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण भी देते हैं -

एवं च ब्राह्मणानि - सोऽन्यद् व्रतमुपाकरिष्यमाणो याज्ञवल्क्यो मैत्रेयीमिति होवाच - प्रव्रजिष्यन् वा अरे अहमस्मात् स्थानादस्मि होक्त्वा याज्ञवल्क्य: प्रवव्राज [न्याय दर्शन ५।१।६। वात्स्यायन]

इसी प्रकार यहाँ पर भी (प्राजापत्यां सर्ववेदसदक्षिणाम् इष्टिं निरूप्य) प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि की, जिसमें शिखा व यज्ञोपवीत का भी त्याग किया जाता है ऐसा महर्षि दयानन्द स. भी सत्यार्थप्रकाश संन्यास प्रकरण में लिखते हैं - प्रजापति अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके यज्ञोपवीत व शिखादि चिह्नों को छोड़, आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकलकर संन्यासी हो जावे।

Scanned with CamScanner

(आत्मनि अग्नीन् समारोप्य) अपनी आत्मा में अग्नियों को समारोपित करके, जिन अग्नियों का सेवन वह बाहर किया करता था अब संन्यास में उन अग्नियों को अपने भीतर आत्मा में प्रतिष्ठित करके समाज का कल्याण करेगा, अब ये अग्नियाँ उसकी उधार नहीं है अब वह स्वयं ही अग्निस्वरूप हो गया है। सर्वहुत यज्ञ कर चुका है अब उसके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं रहा, बस सांसारिक ऐषणाओं से मुक्ति होने से वह अर्धमुक्त जीवनमुक्त अवस्था में रहता है। जो पाना है, जिसे जानना है इसके लिए सतत प्रयासरत है इसलिए मनु महाराज कहते हैं (ब्राह्मणः गृहात् प्रव्रजेत्) ब्राह्मण गृह से ही निकल जाए, उत्तम ज्ञान से युक्त, ब्राह्मणत्व से युक्त ब्राह्मण गृहस्थ आश्रम से ही संन्यास की दीक्षा ले लेवे। उसे वानप्रस्थ की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसकी योग्यता संन्यासी बनने की है अतः उसे आगे बढ़ाना हमारा कर्तव्य है। जैसे कक्षा में कुछ बालक अपनी आयु वर्ग वालों से कहीं अधिक विज्ञ होते हैं, जिसके कारण उन्हें बीच की कक्षाओं को न करते हुए आगे बढ़ा दिया जाता है। उपर्युक्त मनु के विचार का समर्थन जाबालऋषि ने भी किया है -

ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। इतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वा।

सामान्य नियम - चारों क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास को करने का है पर यदि साधक में योग्यता है तो वह गृहस्थ से सीधे संन्यास ग्रहण कर सकता है अथवा ब्रह्मचर्य से भी सीधे संन्यास ग्रहण कर सकता है।

भावार्थ - जिसमें सर्वाहुति होती है ऐसे प्राजापत्य यज्ञ का अनुष्ठान कर तथा बाह्य अग्नि को स्वयं की आत्मा में ज्ञानरूप में प्रतिष्ठित करके गृहस्थ से सीधे संन्यास का अधिकारी हो जाता है।

प्रसङ्ग - जो ब्राह्मण सभी को निर्भय करके संन्यास ग्रहण करता है वह किन लोकों को प्राप्त करता है इस श्लोक में कहा गया है -

(5) पद्य - यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥6।39॥

Scanned with CamScanner

अर्थ- (यः सर्वभूतेभ्यः अभयं दत्वा) जो सभी भूतों = प्राणियों को अभयदान देकर, जो से हम पूर्व प्रसंग से जोड़कर समझेंगें क्योंकि सम्प्रति संन्यासाश्रम का प्रकरण चल रहा है तो जो संन्यासी अथवा परिव्राजक, परिव्राजक भी संन्यासी को ही कहते हैं क्यों? क्योंकि जो घूम घूम कर समाज की सेवा करता है, 'परितः व्रजति इति परिव्राजकः' संन्यासी के लिए नियम है कि एक स्थान पर तीन दिन से अधिक निवास न करे, परिभ्रमण करते हुए समाज का कल्याण करे, जिससे स्वयं के अन्दर राग द्वेषादि न उत्पन्न हों, पर यदि कल्याण सधता है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। जो संन्यासी सर्वभूतेभ्यः सभी प्रकार के प्राणियों को चाहे उद्भिज अण्डज स्वेदज या जरायुज, प्राणीजगत् में सभी प्रकार के चेतन प्राणियों का समावेश हो जाता है स्थावर हो फिर जंगम हो, सम्पूर्ण जगत् स्थित प्राणियों को 'अभयं दत्वा' अभय दान देकर अर्थात् संन्यास जो लेना चाहता है उसका एक मात्र कारण परमात्म-ज्ञान ही हो, भय से, तनाव से, क्षणिक वैराग्य से, संन्यास ग्रहण न करे अपितु निर्वैर होकर, निर्लोभ, निष्काम, निर्मोही होकर संन्यास ग्रहण करे जिससे वह संसार का उपकार भलीभांति कर पायेगा। यदि स्वयं षड्शत्रुओं से घिरा हुआ है तो अन्यों को स्वयं से निर्भय नहीं कर पायेगा, अतः सभी प्राणियों को अभय दान देता हुआ (गृहात् प्रव्रजति) घर से निकलता है तब (तस्य ब्रह्मवादिनः) उस ब्रह्मविद् संन्यासी के, ब्रह्म वेत्तीति ब्रह्मवित्- जो ब्रह्म को जानता है समझता है वही ब्रह्मवित् होता है अतः उस ब्रह्मज्ञानी के (लोकाः तेजोमयाः भवन्ति) सभी लोक तेजोमय हो जाते हैं। अर्थात् तेजोमय = प्रकाशमय = मुक्ति का आनन्द स्वरूप लोक प्राप्त होता है।

जो भी व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मात्सर्य आदि दोषों से रहित है वही अन्यों को अभय-दान दे सकता है, जो वासनाओं व क्लेशों से संग्रसित है वह अभय कैसे दे सकता है-

"पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परि त्यक्ता, मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु"

(शतपथ 14।6।5।।)

अथर्ववेद में तो -

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥

Scanned with CamScanner

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

[अथर्ववेद का॰ 19, सूक्त 15, मं॰ 5, 6]

जब जड़-चेतन मित्र-शत्रु, वर्तमान-परोक्ष, दिन-रात, और सभी दिशाओं से अभय की याचना की गई है तो संन्यासी से क्यों नहीं? अर्थात् संन्यासी तो चेतन ब्रह्मवित् है अतः उससे भी अभय होने की बात कही गई है। तभी वह संन्यासी बन कर प्रकाशमय, तेजोमय, आनन्दमय ब्रह्मलोक को प्राप्त कर पायेगा।

भावार्थ-

जो ब्रह्मज्ञानी सभी प्राणियों को स्वयं से निर्भय करते हुए गृहस्थ से संन्यास की ओर गमन करता है वह ब्रह्मतेजोमय लोक को प्राप्त करता है।

प्रकाश का अर्थ भौतिक प्रकाश न होकर ज्ञान का आलोक 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की भावना की ओर इंगित किया गया है।

Scanned with CamScanner